अङ्क-२४
जुलाई-दिसम्बर २०१४

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

महाकविभवभूति का वेदार्थावबोध

डॉ. सदानन्द त्रिपाठी

श्रीसीतारामभक्ताय श्रौतयागविधायिने ।
नाट्यशास्त्रप्रवीणाय नमोऽस्तु **भवभूतये** ॥
वेदार्थावबोधो ननु **भवभूते**र्मनस्विनः ।
सुधीजनप्रमोदाय शोधपत्रेऽत्र वर्ण्यते ॥

सत्य-सनातन-आर्षवैदिकधर्म एवं भारतीय-हिन्दूसंस्कृति तथा सभ्यता के मूल आधारस्तम्भ, समग्र ज्ञानराशि के आकरग्रन्थ वेद भगवान् हैं जिनमें चराचर जगत् के परमकल्याणार्थ प्रतिपद मार्गनिर्देश उपलब्ध होता है। ये वे शाश्वत देवकाव्य हैं जो कि त्रिकाल में कभी भी न तो जीर्ण होते हैं और न विनष्ट ही होते हैं;- (क) **'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'**[१] (ख) **'देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान'**।[२] परमेश्वर के श्वासोच्छ्वास से, सहजरूप से निःसृत अपौरुषेय वेद-शब्दराशि को पूर्णतः अपरिवर्तितरूप में यथावत् सुरक्षित रखने में मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा आविष्कृत भाषावैज्ञानिक आर्ष-पाठपद्धति - (क) प्रकृति-पाठ, तथा (ख) विकृतिपाठ-पद्धति की महती भूमिका रही है। प्रकृतिपाठ में संहितापाठ, पदपाठ एवं क्रमपाठ की व्यवस्था है। विकृतिपाठ के अन्तर्गत जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और घन - ये अष्टविकृतियाँ परिगणित हैं। इन उपादेय पाठपद्धतियों के सुरक्षाकवच से सर्वथा संरक्षित होने के कारण ही मूल वेद-शब्दराशि में एक भी वर्ण, मात्रा तथा उदात्त-अनुदात्त-स्वरित स्वर का विपर्यय न होने से करोड़ों-करोड़ों वर्षों की अनवरत यात्रा के पश्चात् आज भी यथावत् अक्षुण्णरूप से विद्यमान रहकर वैश्विक-समाज को सदाचारपरक नैतिकशिक्षा तथा बहुमूल्य अध्यात्मज्ञानरश्मि से सर्वात्मना आलोकित कर रहे हैं और अनन्तकाल तक भविष्य में भी करते रहेंगे।

देववाणी संस्कृतभाषा के आदिकवि महर्षि प्राचेतस वाल्मीकि, कृष्णद्वैपायन-बादरायण वेदव्यास भगवान् द्वारा विनिर्दिष्ट श्रीसीतारामभक्तिधारा की उदात्त श्रीवैष्णवीपरम्परा के अप्रतिम उद्गाता तथा पूर्ववर्त्ती आचार्यभरतमुनि, महाकविभास, कविकुलगुरु कालिदास आदि की नाट्यरचनाधर्मिता के

---

[१] अथर्ववेदः १०.८.३२
[२] अथर्ववेदः ९.१०.९

सच्चेष्ट, सफल अनुगामी हमारे प्रतिपाद्य **वेदार्थावबोध** की साक्षात् प्रतिमूर्ति **महाकविभवभूति** हैं। उज्जयिनी के नृपतिवरवीर विक्रमादित्य की सातवीं शताब्दी तथा ईसा की आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दक्षिणापथ के विदर्भ (सम्प्रति बरार नाम से अभिधेय) प्रान्त के 'पद्मपुर' नामक नगर में प्रख्यात काश्यपगोत्री, कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयशाखाध्यायी, पङ्क्तिपावन, पञ्चाग्नि-उपासक, यमनियमादिपालक, सोमयाजी, उदुम्बरनामधारी, ब्रह्मविद्वरिष्ठ, वाजपेययागानुष्ठाता, स्वनामधन्य भट्टगोपाल कवि के सुपौत्र तथा पवित्रकीर्ति श्रीनीलकण्ठ के सुपुत्र श्रीकण्ठनामधारी, व्याकरण-मीमांसा-न्यायशास्त्र के प्रथितयशा विद्वान्, उम्बेकाचार्य नाम से मीमांसकजगत् में विश्रुत महाकविभवभूति का आविर्भाव जतुकर्णी नाम्नी मातृश्री की दक्षिणकुक्षि से हुआ।[३] आपके श्रीगुरु का नाम 'ज्ञाननिधि' था जो महर्षियों में वैदिक ऋषि अङ्गिरा के समान तथा परमहंसों में अग्रगण्य थे।[४] भगवान् वाल्मीकि ने जगज्जननी, परमाद्याशक्ति देवी सीता तथा निखिलब्रह्माण्डनायक, परात्परपुरुष, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामभद्र का जो हृद्यानवद्य प्रत्यक्षदृष्ट पावन लीलाचरित श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण में सविस्तार वर्णित किया है। उन्हीं श्रीसीतारामचन्द्र की अनन्यभावापन्न अहैतुकी दास्यभक्ति से सर्वतोभावेन अनुप्राणित होकर ही महाकविभवभूति ने **'महावीरचरितम्'** तथा **'उत्तररामचरितम्'** नामक रूपकद्वय का प्रणयन किया जिनमें क्रमशः वीर तथा करुणरस का अवलम्बन ग्रहण किया है।[५] पूर्वापर-क्रम से विचारणीय **'मालतीमाधवम्'** नामक रूपक शृङ्गाररस से परिपूर्ण है। इस नाटकत्रयी में महाकविभवभूति द्वारा यथावसर प्रसङ्गप्राप्त अद्भुत, हास्य, बीभत्स आदि विविध रसों का भी सन्निवेश दृष्टिगोचर होता है।

महामीमांसक, करुणरससिद्ध महाकविभवभूति का दायभाग-रूप में वंशानुक्रमपरम्परा सम्प्राप्त श्रौतयागविषयक **वेदार्थावबोध** अप्रतिम तथा अगाध है। परिणामस्वरूप आपने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञाजन्य प्रातिभकाव्यशक्ति का समग्र विनियोग चिन्मयनित्यसाकेतधाम के

---

[३] **(क) 'अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र केचित्तैत्तिरीयाः काश्यपाश्चरणगुरवः पङ्क्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्त्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः कविमित्तधेयमस्माकमिति भवन्तो विदाङ्कुर्वन्तु'। - (महावीरचरितम् प्रथमोऽङ्कः, सूत्रधारकथनम्)**

(ख) उत्तररामचरितम् प्रथमोऽङ्कः; नान्द्यन्ते सूत्रधारकथनम्।

[४] **श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणां यथाङ्गिराः।**
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः॥ - (महावीरचरितम् प्रथमोऽङ्कः, ५)

[५] **प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीनां**
यत्पावनं रघुपतेः प्रणिनाय वृत्तम्।
भक्तस्य तत्र समरंसत मेऽपि वाच-
स्तत्सुप्रसन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम्॥ - (महावीरचरितम् १/७)

दिव्यदम्पती श्रीसीतारामचन्द्र भगवान् को आदर्श नायक-नायिका के रूप में संस्थापित करके लोकशिक्षण के लिए कलिकलुषनिकन्दन पावन चरित का चाक्षुषप्रत्यक्ष नाटकरचना के माध्यम से सम्पादित किया है। महाकविभवभूति नाट्याचार्यसम्प्रदाय-परम्परा के प्रबल अनुगामी हैं । आपके द्वारा प्रणीत पूर्वोक्त तीनों नाटकों में विशेषतः 'महावीरचरितम्' तथा 'उत्तररामचरितम्' में वेदार्थ का आश्रयण किया गया है। आपने अपने प्रारम्भिक नाटक 'मालतीमाधवम्' में अपने अगाध वैदिक ज्ञान का सङ्केत करते हुये कहा है कि वेदों का अध्ययन, उपनिषदों तथा साङ्ख्य एवं योगादि का जो ज्ञान है; प्रकृत प्रसङ्ग में उसके कथन का औचित्य क्या है ? क्योंकि उनसे नाटक में कुछ भी गुण नहीं है; इत्यादि।

यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां साङ्ख्यस्य योगस्य च ।
ज्ञानं तत्कथनेन किं न हि ततः कश्चिद् गुणो नाटके॥[६]

प्रौढ प्रातिभज्ञान से संवलित होने के कारण आप व्युत्पत्तियोजना के लिये वेदार्थावबोध का विनियोग करने में सिद्धहस्त हैं, उसका लोभ संवरण नहीं कर पाते हैं। इसका निदर्शन हमें 'उत्तररामचरितम्' नाटक में दो बार दृष्टिगोचर होता है। प्रथमतः द्वितीयाङ्क में श्रीराम के मुखारविन्द से ऋग्वैदिक ऋचा की प्रथम पङ्क्ति का उच्चारण कराकर तपस्वी शम्बूक को उन तेजोमय तथा मङ्गलकारी वैराज नामक लोकों की प्राप्ति का वरदान दिया है जिनमें आनन्द तथा मोद के साथ ही अणिमादिक समस्त पुण्य सम्पत्तियाँ शाश्वतरूप से विद्यमान रहती हैं ;-

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च सम्पदः ।
वैराजा नाम ते लोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः॥[७]

महाकविभवभूति ने स्वरचित इस पद्य का मूल उपजीव्य ऋग्वेद के **'पवमानसूक्त'** के अधोलिखित मन्त्र को दृष्टिगत रखकर बनाया है ;-

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥[८]

प्रस्तुत ऋङ्मन्त्र की प्रथम पङ्क्ति तथा महाकविविरचित पूर्वोक्त अनुष्टुप् छन्दोबद्ध पद्य की प्रथम पङ्क्ति में पर्याप्त भावसाम्य परिलक्षित होता है ।

इसी प्रकार, द्वितीय निदर्शन के रूप में चतुर्थाङ्क में महर्षिवसिष्ठपत्नी अरुन्धती माता कौसल्या से कह रही हैं कि - 'आविर्भूतब्रह्मज्योतिसम्पन्न ब्राह्मणों के जो व्याहार (वचन-कथन) हैं, उनके विषय में कथमपि संशय नहीं करने चाहिये। क्योंकि, इन लोगों की वाणी में कल्याणकारिणी लक्ष्मी (सिद्धि) का

---

[६] मालतीमाधवम्, प्रथमोऽङ्कः, पद्यम् ८
[७] उत्तररामचरितम्, द्वितीयोऽङ्कः, पद्यम् १२
[८] ऋग्वेदसंहिता ९.११३.११

निवास होता है। ये अर्थहीन, निरर्थक वाणी नहीं बोलते हैं ;-

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहारास्तेषु मा संशयोऽभूत्।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति॥[९]

वेदार्थावबोधज्ञ भवभूति ने शालिनीच्छन्दोबद्ध प्रकृत पद्य में ऋक्संहिता के **'ज्ञानसूक्त'** के अधस्तन मन्त्र का आश्रयण ग्रहण किया है ;-

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥[१०]

इस ऋग्वैदिक ऋचा का अन्तिम चरण तथा भवभूतिविरचित पूर्वलिखित पद्य का तृतीय-चरण भावसाम्यता की दृष्टि से सुतरां ध्यातव्य है।

इन उपर्युक्त उद्धरणों के अतिरिक्त श्रौतपरम्परासंवाहक महाकवि भवभूति द्वारा प्रणीत नाटकत्रयी में उनके **वेदार्थावबोध** के परिचायक अन्यान्य सन्दर्भ गुम्फित हैं जिनके विमर्श के लिए एक स्वतन्त्र शोधालेख की अपेक्षा रखती है। इस दृष्टिकोण से विवेचन-चिन्तन करने पर महाकविभवभूति की वेदार्थावबोध-परम्परा का अनुशीलन किया जा सकता है।

पञ्चमवेद के रूप में सुप्रथित नाट्यवेद का प्रणयन पितामह ब्रह्मा द्वारा किया गया है जिसमें वेदबाह्य सहृदयरसिकजनों के मनोरञ्जनार्थ संविधान किया गया है । नाट्यशास्त्रकार आचार्य आदिभरतमुनि ने डिण्डिमघोष करते हुये कहा है कि नाट्यशास्त्ररूपी इस पञ्चमवेद की संरचना में उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य (विषयवस्तु), सामवेद से गीत (गानविधि), यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से श्रृङ्गारादि रसों को ग्रहण किया है ;-

सङ्कल्प्य भगवानेवं सर्वान्वेदाननुस्मरन् ।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम् ॥
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥[११]

ज्ञातव्य है कि जिस प्रकार श्रुतिस्मृतिशास्त्रानुमोदित यज्ञायोजन-प्रक्रिया में क्रियान्वयन-प्रकार-पद्धति का अवलम्बनपूर्वक शास्त्रीय प्रामाणिक विधि से यज्ञस्थलचयन, भूमिपूजन, कुण्डमण्डप-यज्ञवेदिका (यज्ञशाला) आदि का निर्माण करके आचार्य सहित यजमान-यजमानपत्नी, परिजन, ऋत्विग्गण, होता-अध्वर्यु-उद्गाता-ब्रह्मा-प्रतिप्रस्थाता आदि के द्वारा सचेष्ट सक्रिय सहकार से सविधि

---

[९] उत्तररामचरितम्, चतुर्थोऽङ्कः, पद्यम् १८
[१०] ऋग्वेदसंहिता १०.७१.२
[११] भरतमुनिकृतं नाट्यशास्त्रम् अध्याय : १/१६-१७

सस्वर चतुर्वेदीय मन्त्रपाठादि के साथ यज्ञप्रक्रिया सम्पादित की जाती है । उसी प्रकार नाट्याभिनय-प्रस्तुति-प्रदर्शन में भी उदात्तलक्षणसम्पन्न नायक-नायिका, अन्य सहकर्मी स्त्री-पुरुषपात्र, प्रतिनायक आदि की अपेक्षा होती है जो कथानकगत विषयवस्तु को अभिव्यक्त करने के लिये परस्पर सुष्ठु संवादशैली में कथोपकथन करते हैं और इस सबका सम्पादन-केन्द्रस्थली होती है यज्ञशाला की ही भाँति नाट्यशाला । यहाँ यह ध्यातव्य है कि नाट्यशाला (नाट्यमण्डप) की भी संरचना ठीक उसी प्रकार की होती है जिस प्रकार से यज्ञशाला (यज्ञमण्डप), यज्ञवेदी आदि की । नाट्यशाला में भी सभी विघ्नविनाशक मङ्गलप्रद देवताओं का विध्यनुसार संस्थापन-अर्चन आदि सम्पन्न किया जाता है ।

श्रौतयागविधानपरम्पराविद् महाकविभवभूति महाभाग ने स्वविरचित तीनों नाटकों में **वेदार्थावबोधपूर्वक** श्रौतस्मार्त्तशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र के जिन तात्त्विक घटकों तथा पारिभाषिक गम्भीर पदावलियों का सन्निवेश हार्दरीति से उपस्थापित किया है उससे इन दृश्यश्रव्यकाव्यप्रबन्धों में मणिकाञ्चनसंयोग सुघटित हो गया है, जिससे समुपस्थित प्रेक्षक तथा सहृदय श्रोता-पाठकवृन्द ब्रह्मास्वादसहोदर की प्रेय-श्रेय रसानुभूति करके स्वयं को कृतकृत्य-कृतार्थ मानता है । प्रकृत शोधालेख में हम वैदिकवाङ्मय के आलोक में सुधीजन प्रमोदार्थ तत्तत् परिचेय तत्त्वों का विवेचन प्रस्तुत करने का सविनय प्रयास कर रहे हैं ।

१. सोमपीथिनः[१२]

महाकवि भवभूति अपने 'महावीरचरितम्' नामक रूपक के प्रारम्भ में आत्मपरिचय प्रदान करते हुये लिखते हैं कि हमारे वंशज सोमपीथी अर्थात् सोमरस पान करने वाले सोमयाजी ब्राह्मण हैं । श्रौतयागपरम्परा में सोमयज्ञ का महत्त्वपूर्ण स्थान है । श्रुतिस्मृतिशास्त्रप्रतिपादित अधिकृत व्यक्ति वसन्त-ऋतु में अग्नियों का आधान करके उनमें सोमयज्ञ प्रथमतः करके दर्शपूर्णमास आदि का अनुष्ठान करे अथवा द्वितीय मत में अग्न्याधान के पश्चात् दर्शपूर्णमास इत्यादि करके सोमरस की आहुति के माध्यम से सोमयज्ञ सम्पन्न करे । इस सोमयज्ञ में प्रमुख द्रव्य सोमवल्ली-सोमलता से निःसृत सोमरस होता है । इसमें सोमवल्ली को सविधि क्रय करके उसका रस निकालकर विश्वकल्याणार्थ होम किया जाता है, अतः इसे 'सोमयज्ञ' कहते हैं । सोमयज्ञ में वैदिक-शास्त्रविधि से कूटकर निकाले गये सोमरस को वेदमन्त्रों से अभिमन्त्रित करके अग्नि को आहुति प्रदान करने के पश्चात् यज्ञदीक्षित यजमान तथा होता - अध्वर्यु- उद्गाता- ब्रह्म- ऋत्विग्गण के साथ आचार्य (यज्ञाचार्य) सोमरस पान करते हैं यज्ञनारायण के कृपाप्रसाद के रूप में । महाकवि भवभूति द्वारा कथित **सोमपीथिनः** पद का सङ्क्षेपतः

[१२] महावीरचरितम् प्रथमोङ्कः, महाकविवंशपरिचयः; उत्तररामचरितम् १/८ पद्यस्यानन्तरम्, श्रीरामकथनम्

भावार्थ यह है कि आपके काश्यपगोत्री कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयशाखाध्यायी वंशधर सोमयागपरम्परा के निष्णात विद्वान् थे जो स्वयं कभी ऋत्विग्गण के रूप में, तो कभी यजमान के रूप में व्रती, दीक्षित होकर सोमरसपान कर राष्ट्र- समाज के कल्याणार्थ समुद्यत रहते थे। इतना ही नहीं, आपने 'उत्तररामचरितम्' के प्रथमाङ्क में भी श्रीरामभद्र के मुखारविन्द से उनके भगिनीपति ऋष्यश्रृङ्ग ऋषि के लिये भी 'सोमपीथी' पद का प्रयोग किया है; - (सीता से) रामः - निर्विघ्नः **सोमपीथी** भावुको मे भगवानृष्यश्रृङ्गः, आर्या च शान्ता।[१३]

सोमपीथी पद की निष्पत्ति होगी - सोमः सोमरसः तस्य पीतं पानं, तदस्यास्तीति। विग्रह में 'इन्' प्रत्यय करने पर **सोमपीती** ; तथा **पृषोदरादीनि** (पा.सू) से त्कार का थकार करके **सोमपीथी** पद बनेगा, अथवा पा धातु से **'पातृ तुदिवचिरिचिसिभ्यस्थक्'** (उणादिसूत्र २/७) सूत्र से थक् प्रत्यय होने पर सोमपीथ तथा 'इन्' प्रत्यय लगाने पर 'सोमपीथी' पद सिद्ध होता है। कहीं-कहीं पर सोमपीती पाठ प्रयुक्त है। श्रीमदमरसिंह ने अपने कोशग्रन्थ में - **'सोमपीथी तु सोमपः'**[१४] के द्वारा सोमपीथी का पर्य्याय सोमपः अर्थात् सोमरस पान करने वाला बतलाया है। श्रीभानुजीदीक्षित ने इसकी व्याख्या में व्युत्पत्ति पूर्वोक्तानुसार प्रस्तुत की है। ऋक्संहिता में सोमपीथी का वर्णन द्रष्टव्य है ;-

न मा॑ त॒मन्न श्र॑म॒न्नोत त॒न्द्र॒न्न वो॑चाम मा सु॑नो॒तेति॒ सोम॑म् ।
यो मे॑ पृ॒णाद् यो द॒द॒द् यो नि॒बोधा॒द् यो मा॑ सु॒न्वन्त॒मुप॒ गोभि॒राय॑त् ॥[१५]

(२) यज्ञवितीर्णगोसहस्रः

जब जामदग्न्य परशुराम विदेहराज जनक के साथ संवाद करते समय क्षत्रिय नृपों के वध का वर्णन करते हुये अपने परशु (फरसे) की प्रशंसा करते हैं, तब मिथिलेश महाराज ब्रह्मण्य होने तथा यज्ञों में अनेकों बार सहस्र-सहस्र गौएँ दान करने वाले होने के कारण स्वयं को रोक लेते हैं। इतने में नेपथ्य से अधोलिखित पद्य गुञ्जायमान हो उठता है ;-

विरम नरपते ! कथं द्विजेऽस्मिन्नविरतयज्ञवितीर्णगोसहस्रः ।
तव पलितनिरन्तरः पृषत्कं स्पृशति पुराणधनुर्धरस्य पाणिः ॥[१६]

महाकविभवभूति ने उपर्युक्त **'अविरतयज्ञवितीर्णगोसहस्रः'** पद-प्रयोग द्वारा यह संसूचित किया है कि श्रौतयाग-प्रक्रिया सतत प्रचलिष्यमाण रहती है और उसमें श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों को हजारों-

---

[१३] उत्तररामचरितम् प्रथमोऽङ्क, पद्यम् ८, अनन्तरम्
[१४] अमरकोशः २/७ ब्रह्मवर्गः / ९ 'सुधा-रामाश्रमी' संस्कृतटीकायाम् ।
[१५] ऋग्वेदसंहिता २/३०/७
[१६] महावीरचरितम् तृतीयोऽङ्कः, पद्यम् ३०

हजारों गायों का दान किया जाता है। महाराज जनक के माध्यम से आपने अपनी उस महीयसी याज्ञिकपरम्परा को उल्लेखित किया है जिसका निर्देश श्रौतसूत्रों में अधोलिखितानुसार किया गया है;-

(१) तेभ्यश्चत्वारि सहस्राणि ददाति शतमानांश्च तावतः ॥६॥

यजमान आद्यर्त्विग्भ्यः प्रत्येकं प्रत्यृत्विजमेकैकं **गोसहस्रमेकैकं** सौवर्णं शतमानं च दद्यात् । रक्तिकाशतेन शतमानम् ॥६॥[१७]

(२) ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा ददाति ॥२१॥

कर्मकरत्वादेव ऋत्विजां प्राप्तत्वात् पुनर्ऋत्विग्ग्रहणं चमसाध्वर्यूणां व्यावृत्यर्थम् । एवं च **यद्गोशतदानं** तत् षोडशभ्य एवर्त्विग्भ्यः । न तु कर्मकरत्वाविशेषेऽपि चमसाध्वर्युभ्यः ॥२१॥[१८] तत्र पूर्वपक्षयति - **(३) पृथक्शतानि च पुरुषभेदात् ॥२२॥**

यद् **गवां शतं** देयत्वेनोक्तं, तत् एकैकस्मै ऋत्विजे पृथक् पृथग् दद्यात् । कुतः ? पुरुषभेदात् । सम्प्रदानभूतानामृत्विजां भेदात् । सम्प्रदानस्य च देयद्रव्यापेक्षया प्राधान्येन प्रतिप्रधानं गुणस्यावर्त्तनीयत्वात् ॥२२॥[१९]

(४) शौनःशेपान्ते पृथक् शते ददाति ॥५॥

होत्रेऽध्वर्यवे च प्रत्येकं **गवां शतं शतं** दद्यात् ॥५॥[२०]

(५) सहस्रे वा ॥६॥ विकल्पः ॥६॥[२१]

उपर्युक्त राजसूययज्ञनिरूपण तथा अश्वमेधयज्ञनिरूपण-प्रसङ्ग में ऋग्विग्, अध्वर्यु को जो शत-सहस्र गोदान- दक्षिणा का उल्लेख किया गया है, वह असङ्ख्यार्थ का वाचक है । एतदर्थ महीधराचार्य का वचन प्रमाण है - **'सहस्रशतशब्दावसङ्ख्यार्थौ'** ।[२२] इससे सिद्ध होता है कि शत, सहस्र का उल्लेख तो उपलक्षण मात्र है । यथार्थतः ये पद अनन्तता के बोधक हैं ।

(३) राष्ट्रगोपः पुरोहितः

भगवान् शिव का पिनाक सीतास्वयंवर में श्रीराम द्वारा तोड़े जाने पर विदेहराज सीरध्वज जनक के प्रति भार्गवपरशुराम की क्रोधज्वाला अत्यन्त प्रचण्ड होने पर उनके कुलपुरोहित गौतमपुत्र

---

[१७] कात्यायनश्रौतसूत्रम् अध्यायः २०/कण्डिका १/सूत्रम् ६ सवृत्तिः; अश्वमेधनिरूपणम्
[१८] कात्यायनश्रौतसूत्रम् अध्यायः १०/कण्डिका २/सूत्रम् २१ सवृत्तिः; सोमयागनिरूपणम्
[१९] कात्यायनश्रौतसूत्रम् अध्यायः १०/कण्डिका २/सूत्रम् २२ सवृत्तिः; सोमयागनिरूपणम्
[२०] कात्यायनश्रौतसूत्रम् अध्यायः १५/कण्डिका ६/सूत्रम् ५ सवृत्तिः; राजसूयनिरूपणम्
[२१] कात्यायनश्रौतसूत्रम् अध्यायः १५/कण्डिका ६/सूत्रम् ६ सवृत्तिः; राजसूयनिरूपणम्
[२२] शुक्लयजुर्वेदसंहिता अध्यायः १३/मन्त्रः २० 'काण्डात् काण्डात्०' महीधरभाष्यम्

अहल्यानन्दन शतानन्द समझाते हुये कहते हैं कि आप व्यर्थ क्रोध न करें । किसका सामर्थ्य है कि हमारे यजमान राजर्षिजनक की छाया को भी छू सके । जामाता श्रीराम का स्पर्श तो अत्यन्त दूर की बात है । हम लोग इनके सच्चरितरूप स्तम्भ पर अवलम्बित गृहस्थों के घर में गृह्यवह्नि के समान रहते आये हैं । इस स्थिति में यदि इन पर किसी भी दूसरी ओर से आपत्ति आ जाय तो हमारे प्रिय तप, ब्राह्मणत्व तथा महर्षि अङ्गिरा के कुल को धिक्कार है । यह कथन सुनकर महर्षि विश्वामित्र शतानन्द को साधुवाद प्रदान करते हुये कहते हैं - वत्स गौतम ! साधु, साधु । तुम जैसे पुरोहित से राजा जनक कृतकार्य हैं । क्योंकि, उसके राष्ट्र में न कोई पीड़ा होती है, न उस पर कोई आपत्ति आती है, न वह जीर्ण होने पाता है, जिसे तुम्हारे जैसा विद्वान् ब्राह्मण, राष्ट्ररक्षक पुरोहित के रूप में सदा प्राप्त रहता है;-

विश्वामित्रः - साधु गौतमवत्स ! साधु ! कृतकृत्य एष राजा सीरध्वजस्त्वया पुरोहितेन ।
न तस्य राष्ट्रं व्यथते न रिष्यति न जीर्यति ।
त्वं विद्वान् ब्राह्मणो यस्य **राष्ट्रगोपः पुरोहितः** ॥[२३]

समाज-राष्ट्र के निर्माण में पुरोहित की महती भूमिका से भवभूति सर्वथा परिचित हैं । वे जानते हैं कि यदि पुरोहित पूर्णमनोयोग से प्रजाजनों के कष्टों को देखकर अपने आनुष्ठानिक दायित्व-निर्वहण में सन्नद्ध है तो राज्य-राष्ट्र सुख-शान्ति तथा समृद्धि आदि से परिपूर्ण रहेगा । वैदिककाल में राजा का कर्त्तव्य शान्ति के अवसर पर केवल प्रजा का पालन ही नहीं होता था, अपितु उसका महत्त्वपूर्ण कार्य युद्ध के समय शत्रु के आक्रमणों से अपनी प्रजा की रक्षा करने का भी होता था । राजा स्वयं युद्ध में जाता था तथा उसके साथ उसका सेनानी (सेनापति) और पुरोहित भी अवश्यमेव रहते थे । पुरोहित का कार्य युद्धस्थल में देवताओं की प्रार्थना-उपासना आदि करके राजा को विजयश्री प्राप्त करने में सहायता करना होता था । उदाहरणार्थ दाशराज्ञयुद्ध के अवसर पर सुदास के साथ उनके कुलपुरोहित वसिष्ठ के रहने तथा विजय के निमित्त देव-प्रार्थना करने का सुस्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है (ऋसं. ७/८३/४) ।

यथा - अग्निमीळे **पुरोहितं** यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥[२४]

शतपथब्राह्मण के अनुसार राजा को अश्वमेधयज्ञ करने पर सम्राट् अथवा चक्रवर्त्ती पद प्राप्त होता था । अभिषेक से पूर्व ही राजा को ग्यारह ११ अधिकारियों के पास जाना होता है जो 'रत्नी' के नाम से अभिहित होते हैं । इनमें सेनानी (सेनाध्यक्ष) के बाद पुरोहित का स्थान गौरवास्पद है; - (१) सेनानी (सेनापति), (२) पुरोहित, (३) अभिषेचनीय राजा, (४) महिषी (महारानी), (५) सूत, (६) ग्रामणी (ग्राम

[२३] महावीरचरितम् अङ्कः ३/१८
[२४] ऋक्संहिता १/१/१

या पञ्चायत का अध्यक्ष), (७) क्षत्तृ, (८) सङ्ग्रहीतृ (कोषाध्यक्ष), (९) भागदुघ (कराहर्त्ता), (१०) अक्षावाप तथा (११) गोविकर्त (वनाधिकारी) ।[२५]

महर्षियास्क 'पुरोहित' शब्द का निर्वचन करते हुये कहते हैं कि जो श्रोत्रिय विप्र समाज-राष्ट्र का हितचिन्तन करते हुये श्रुतिस्मृतिविहित स्वकर्म-धर्म में प्रवृत्त होता है तथा राजागण जिसको राज्यरक्षार्थ शान्तिक, पौष्टिक एवम् अभिचारिक कर्मों में आगे रखते हैं वह 'पुरोहित' पदवाच्य है । यथा - **'पुरोहितः पुर एनं दधति ॥ राजानो हि शान्तिकपौष्टिकाभिचारिकेषु कर्मसु एनं पुरोऽग्रे दधति धारयन्ति पुरस्कुर्वन्तीति पुरोहितः । पुरतो निधानात् । पुरस्करणाद् वा ॥ "दधातेर्हि" (पा. सूत्रं ७/४/४२) क्तप्रत्ययोऽत्र कर्मणि (पा. ३/२/१०२) ॥ (पादटिप्पण्याम् - पुरोहितो ह्येवाग्निकर्मणि व्याप्रियते'॥**[२६]

ब्राह्मणग्रन्थों में राष्ट्र के सर्वविध समुत्कर्ष में सन्नद्ध जिन आठ वीरों का उल्लेख किया गया है उनमें पुरोहित का भी परिगणन किया गया है । उनके नाम इस प्रकार हैं - (१) राजभ्राता (राजा का भाई), (२) राजपुत्र (राजा का पुत्र), (३) पुरोहित, (४) महिषी (राजा की पटरानी), (५) सूत (सारथी), (६) ग्रामणी (पञ्चायत का अध्यक्ष), (७) क्षत्ता-(सम्भवतः सुरक्षाधिकारी), तथा (८) सङ्ग्रहीता (प्रजा आदि से राजस्व-कर वसूलकर कोश में वृद्धि करने वाला)।

'अष्टौ वै वीरा राष्ट्रं समुद्यच्छन्ति राजभ्राता च राजपुत्रश्च पुरोहितश्च महिषी च सूतश्च ग्रामणी च क्षत्ता च सङ्ग्रहीता चैते वै वीरा राष्ट्रं समुद्यच्छन्त्येतेष्वेवाध्यभिषिच्यते' ॥[२७]

महाकविभवभूति ने वैदिक ऋषि विश्वामित्र के व्याज से जिस **'राष्ट्रगोपः पुरोहितः'** को अनुष्टुप् छन्दोबद्धरूप में प्रस्तुत किया है, वह पुरोहित राष्ट्ररक्षा का महनीय व्यक्तित्व है । इस अर्थका अवबोध कराने वाला समग्र अनुवाक अधस्तनानुसार है;-

यो ह वै त्रीन्पुरोहितांस्त्रीन्पुरोधातृन्वेद स ब्राह्मणः पुरोहितः स वदेत पुरोधा या अग्निर्वाव पुरोहितः पृथिवी पुरो धाता वायुर्वाव पुरोहितो ऽन्तरिक्षं पुरो धातादित्यो वाव पुरोहितो द्यौः पुरो धातैष ह वै पुरोहितो य एवं वेदाथ स तिरोहितो य एवं न वेद तस्य राजा मित्रं भवति द्विषन्तमपबाधते यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितः क्षत्रेण क्षत्रं जयति बलेन बलमश्नुते यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितस्तस्मै विशः सञ्जानते सम्मुखाऽएकमनसो यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितो भूर्भुवः स्वरोम्० ॥[२८]

---

[२५] शतपथब्राह्मणम् ५/३/१/१

[२६] निरुक्तम् अध्यायः २/ पादः ३/ खण्डः १२, निघण्टुभाष्यम् ।

[२७] ताण्ड्यब्राह्मणम् १९/१/४

[२८] ऐतरेयब्राह्मणम् अध्यायः ५/ पञ्चिका ८ / अनुवाकः (ऋचा) २७

(४) वाजपेययाजिनः

महाकविभवभूति एक महान् मीमांसक हैं । पूर्वमीमांसा में प्रायः यज्ञयागादि का ही विधान वर्णित है। उत्तरमीमांसा वेदान्तदर्शन का प्रतिपादक है । महाकवि उभयविध पूर्वोत्तरमीमांसा के तलस्पर्शी, पारदृश्वा, निष्णात विद्वान् हैं । इसका प्रमाण हमें आपके द्वारा विरचित नाटकों के व्युत्पत्तिशास्त्रीय अनुशीलन से प्राप्त होता है । 'महावीरचरितम्' तथा 'उत्तररामचरितम्' नाटक के प्रारम्भ में आपने अपना परिचय दिया है । विशेषतः 'महावीरचरितम्' में वंशपरिचय-परम्परा विस्तृतरूप से उद्धृत करते हुये आपने लिखा है । प्रकृत-प्रसङ्ग में यहाँ आपके तथा आपके वंशजों के द्वारा श्रौतयाग सम्पादित किये जाते रहे, जिनमें सोमयाग, वाजपेययाग आदि प्रमुखतः उल्लेखनीय हैं । अश्वमेधयज्ञ भी आपके आचार्यत्व में क्षत्रिय राजाओं द्वारा सम्पन्न किये जाने का सङ्केत 'उत्तररामचरितम्' के वर्णन से सिद्ध होता है । वाजपेययाजी होने का सन्दर्भ आपने दो बार वर्णित किया है । प्रथमतः - (१) ..... **तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो <u>वाजपेययाजिनो</u> महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः०...॥**[२९] सन्दर्भप्राप्त वाजपेययज्ञ का सङ्क्षिप्त परिचय इस प्रकार है;-

वाजपेययज्ञ के कर्त्ता-अधिकारी केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय ही हैं । इसमें वैश्य का अधिकार नहीं है । सप्तसंस्थान्तर्गत वाजपेय में वैश्य का भी अधिकार है । इसके अनुष्ठान का काल शरद् ऋतु है। इसमें दोनों ओर **'बृहस्पतिसव'** नामक यज्ञ सम्पन्न किया जाता है। आश्विनपूर्णिमा में वाजपेय- सुत्या का अनुष्ठान होता है। उससे पहले भाद्रपदपूर्णिमा तथा कार्तिकपूर्णिमा में दो बृहस्पतिसव करणीय होते हैं; यह इसका एकपक्षीय विधान है । द्वितीयपक्षानुसार बृहस्पतिसव के स्थान पर अग्निष्टोमसाम से समाप्त होने वाला ज्योतिष्टोम होता है अथवा वाजपेय के बारहों शुक्लपक्षों में बारह यागों का अनुष्ठान होता है उनमें छह अयुग्म १,३,५,७,९ तथा ११ वें शुक्लपक्षों में अग्निष्टोमसाम से समाप्त होने वाला ज्योतिष्टोम होता है । छह युग्म २,४,६,८,१० और १२ वें शुक्लपक्षों में तो क्रमशः पृष्ठ्य-षडहसम्बन्धी दिनक्रम से रथन्तर, बृहत्, वैरूप, वैराज, शाक्कर तथा रैवत नामक छह सामों से साध्य स्तोत्र एक-एक दिन में होते हैं। त्रिवृत, पञ्चदश, सप्तदश, एकविंश, सप्तविंश, त्रयस्त्रिंशत्-रूप स्तोम भी क्रमशः एक दिन में होते हैं। वाजपेय के पश्चात् युग्म (सम) शुक्लपक्षों में ज्योतिष्टोम ही होता है । अयुग्म (विषम) छह शुक्लपक्षों में पूर्वानुष्ठान से विपरीत-क्रम से पृष्ठ्यस्तोत्रों का अनुष्ठान होता है, यह तृतीय पक्ष है । अथवा वाजपेय के आगे नौ शुक्लपक्षों में या पौषीपूर्णिमा से लेकर भाद्रपदपूर्णिमा तक राजसूय के अन्तर्गत

[२९] महावीरचरितम् प्रथमोऽङ्कः, कविवंशपरिचयः

पवित्र, अभिषेचनीय, दशपेय, केशवपनीय, व्युष्टिद्विरात्र, क्षत्रधृति, त्रिष्टोम और ज्योतिष्टोम का क्रमशः अनुष्ठान होता है । तदनन्तर उन्हीं का विपरीतक्रम से अनुष्ठान होता है; यह चतुर्थपक्ष है ।[३०]

(२) महाकविभवभूति वाजपेययाग का द्वितीय बार उल्लेख तब करते हैं जब विमाता कैकेयी के द्वारा माँगे गये दो वरदानों में से एक के अनुसार श्रीराम को चतुर्दश वर्ष का वनवास महाराज दशरथ द्वारा अनपेक्षितभाव से दिया जाता है और श्रीराम-लक्ष्मण देवी जानकी के साथ वन की ओर प्रस्थित होते हैं। उस समय भरतकुमार के मातुलश्री युधाजित् भी श्रीराम के साथ ही वनगमन का हठ करके चल पड़ते हैं । उस समय वे श्रीराम को वनगमन से विरत करने के लिये कहते हैं - भो श्रीराम ! केवल मैं ही अकेले आपके पीछे नहीं चल रहा हूँ अपितु इन आबालवृद्ध प्रजाजनों को भी पीछे आते हुये क्यों नहीं देखते हो ? ये अयोध्यापुरी निवासी श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, वृद्धब्राह्मण वाजपेययज्ञ में लब्ध अपने आतपत्र छत्र से तुम्हें बचाने के लिये दौड़ते हुये चले आ रहे हैं । ये अपने कन्धों पर यज्ञीय पात्र लादे हुये हैं । इनकी धर्मपत्नियाँ यज्ञाग्नि (गार्हपत्य, आहवनीय, दाक्षिणात्य, सभ्य और आवसथ्य) साथ ही लेकर चल रही हैं। इनकी होमधेनुएँ आगे ही हाँक दी गयी हैं । इनके साथ मिथिलापुरी निवासी भी हैं;-

युधाजित् - किमहमेकोऽनुगच्छामि ? अपि तु सबालवृद्धाः प्रकृतयः किं न पश्यसि ?
स्कन्धारोपितयज्ञपात्रनिचयाः स्वैर्वाजपेयार्जितै -
- श्छत्रैर्वारयितुं तवार्ककिरणांस्ते ते महाब्राह्मणाः ।
साकेताः सहमैथिलैरनुपतत्पत्नीगृहीताग्नयः
प्राक्प्रस्थापितहोमधेनव इमे धावन्ति वृद्धा अपि ॥[३१]

महाकवि ने शार्दूलविक्रीडितच्छन्दोबद्ध प्रस्तुत पद्य में अपने **वेदार्थावबोध** का प्रत्यक्ष निदर्शन उपस्थापित कर दिया है। इसमें प्रयुक्त 'यज्ञपात्रनिचयाः', 'वाजपेय', 'महाब्राह्मणाः', 'पत्नीगृहीताग्नयः', 'होमधेनवः', प्रभृति पारिभाषिक पद वेदार्थावबोधक, श्रौतयागपरम्परा के परिचायक हैं ।

(५) अश्वमेधः

महाकविभवभूति श्रौतयागसंस्था के सशक्त पक्षधर हैं अतएव उन्होंने अपने **'उत्तररामचरितम्'** नामक नाटक में सार्वभौम, चक्रवर्ती सम्राट् परमाराध्य प्रभुश्रीराम के द्वारा अश्वमेधयज्ञ सम्पादित किये जाने का वर्णन किया है जो **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण** के अनुरूप ही है । जब लोकापवाद के भय से श्रीराम द्वारा लक्ष्मण के सहयोग से वनविहार के व्याज से गर्भभरालसा सीता देवी को वन में छोड़ दिया

---

[३०] कात्यायनश्रौतसूत्रम् अध्यायः १४/१/१-८ सूत्राणि; श्रौतयज्ञपरिचयः, पृष्ठं ४८-४९, पं. श्रीवेणीरामशर्मा गौड 'याज्ञिकसम्राट्' काशी (उ.प्र.)

[३१] महावीरचरितम् चतुर्थोऽङ्कः, पद्यम् ५७

जाता है । करुणहृदय वाल्मीकि ऋषि सादर उन्हें आश्रम में ले जाते हैं । वहीं पर लवकुश- कुमारद्वय का जन्म होता है । भगवान् वाल्मीकि उन दोनों को सुसंस्कारित करके दिव्यास्त्रों की शिक्षा-दीक्षा देकर श्रीरामकथा गायन में प्रवीण कर देते हैं । प्रसङ्गवश वाल्मीकि-आश्रम की वासन्ती ब्रह्मचारिणी आत्रेयी से प्रश्न करती है कि सम्प्रति श्रीराम क्या कर रहे हैं ? तो आत्रेयी उसे बताती है कि वे अधुना **अश्वमेधयज्ञ** सम्पादित कर रहे हैं । सहधर्मचारिणी (पत्नी) के रूप में सीता के अभाववश उनकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर यह यज्ञ सम्पन्न किया जा रहा है; क्योंकि शास्त्रीय विधान है - **"सस्त्रीको धर्ममाचरेत्"** ।

(१) वासन्ती - अथ स रामभद्रः किमाचारः ?

आत्रेयी - तेन राज्ञा राजकतुरश्वमेधः प्रक्रान्तः ।[३२]

(२) तापस शम्बूक भगवान् श्रीराम को प्रणामनिवेदन करके महर्षि अगस्त्य द्वारा अश्वमेधयज्ञ-सम्पादन का आशीर्वादात्मक सन्देश सुनाता है; -

शम्बूकः - ..... अथ प्रजविना पुष्पकेण स्वदेशमुपगत्याश्वमेधसज्जो भव इति।[३३]

(३) लवकुशकुमार के आश्रमवासी मित्रगण बटुक जब लव को यह बताते हैं कि इस आश्रम-परिसर में एक अश्व आया है तो लव तत्कालीन सुरक्षासैनिकों आदि के साथ अश्व की साजसज्जा देखकर उसे अश्वमेधयज्ञ का अश्व निरूपित करते हैं;- **लवः - दृष्टमवगतं च । नूनमाश्वमेधिकोऽयमश्वः।**[३४]

(४) तत्काल, इसीके पश्चात् जब बटुकगण इस अश्व की पहचान तथा छोड़े जाने का कारण जानने की जिज्ञासा करते हैं तो लव महर्षिवाल्मीकि द्वारा पढ़ाये गये काण्ड का स्मरण कराते हुये विश्वविजयी चक्रवर्ती सम्राट् द्वारा अश्वमेधयज्ञ अवश्य करणीय है, ऐसा बतलाते हैं ;-

लवः - (सस्पृहमात्मगतम्) 'अश्वमेध' इति नाम विश्वविजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्र-परिभावी महानुत्कर्षनिकषः।[३५]

लवकुमार के व्याज से अश्वमेधयज्ञ की प्रयोजनीयता महाकविभवभूति ने जिस संरम्भ के साथ निरूपित की है; उसके मूल स्रोतबीज श्रौतसूत्र-ग्रन्थरत्नों में गुम्फित हैं । निदर्शनार्थ **कात्यायनश्रौतसूत्र** का प्रमाण समुद्धृत किया जा रहा है ; -

सौत्रामणीमभिधाय श्रुतिक्रमप्राप्तमश्वमेधमभिदधाति-राज्ञोऽश्वमेधः सर्वकामस्य ॥१॥[३६]

---

[३२] उत्तररामचरितम् द्वितीयोऽङ्कः, पद्यम् ६, अनन्तरम् ;
[३३] उत्तररामचरितम् द्वितीयोऽङ्कः, पद्यम् २८, अनन्तरम् ;
[३४] उत्तररामचरितम् चतुर्थोऽङ्कः, पद्यम् २६अनन्तरम् ;
[३५] उत्तररामचरितम् चतुर्थोऽङ्कः, पद्यम् २६अनन्तरम् ;
[३६] कात्यायनश्रौतसूत्रम् २०/१/१ सवृत्तिः, अश्वमेधनिरूपणम् ;

अत्र राजशब्दोऽभिषिक्तक्षत्रियवाची (१३.४.१.२) "राजेत्येतानभिषिक्तानाचक्षते" इति श्रुत्या प्राप्तराज्याभिषेकस्यैव क्षत्रियस्य राजशब्दवाच्यत्वमिति पूर्वमीमांसायां द्वितीयतृतीयद्वितीयेऽवेष्ट्यधिकरणे निर्णीतम् । एवं च तादृशस्य राज्ञः सर्वकामस्यायमश्वमेध इत्यर्थः । अत्र च सर्वकामशब्देन मुमुक्षुरभिधीयते (१३.४.१.१) । मोक्षप्राप्तौ च सर्वकामप्राप्तेः सम्भवादिति कर्काचार्याः । राजग्रहणाच्च न ब्राह्मणवैश्ययोरयं यज्ञः ॥१॥

[फाल्गुनज्येष्ठाषाढान्यतमशुक्लपक्षेऽष्टम्यां नवम्यां वाऽश्वमेधारम्भः]

अष्टम्यां नवम्यां वा फाल्गुनीशुक्लस्य ॥२॥[३७]

फाल्गुनशुक्लस्याष्टम्यां नवम्यां वाऽश्वमेधमारभेत् (१३.४.१.४) ॥२॥ ग्रीष्म एके ॥३॥[३८]

ज्येष्ठाषाढयोरन्यतरस्य शुक्लाष्टम्यां नवम्यां वाऽऽरभेत् (१३.४.१.२) ॥३॥

डॉ. सदानन्द त्रिपाठी

शासकीयः संस्कृतमहाविद्यालयः,

जयसिंहपुरामार्गम्,

उज्जयिनी (म.प्र.) ४५६००१

[३७] कात्यायनश्रौतसूत्रम् २०/१/२ सवृत्तिः, अश्वमेधनिरूपणम् ;

[३८] कात्यायनश्रौतसूत्रम् २०/१/३ सवृत्तिः, अश्वमेधनिरूपणम् ;